उत्तम ब्रह्मचर्य : मोक्षमार्ग का अन्तिम चरण

श्री प्रतापचन्द्र जैन

ब्रह्मचर्य धर्म के रूप व श्रेणियां

उत्तम ब्रह्मचर्य मोक्षमार्ग के दस धर्मों में एक है और अन्तिम भी। उसके दो रूप हैं : स्थूल-व्यवहार-रूप और सूक्ष्म-निश्चय-रूप। उसकी श्रेणियाँ तीन हैं : उत्तम, मध्यम और जघन्य।

स्थूल रूप में शुक्र रक्षा को ब्रह्मचर्य कहा है। शरीर में सात धातुएं होती हैं, उनमें एक शुक्र है। इसे वीर्य, ब्रह्म और बिन्दु भी कहते हैं। सातों धातुओं में यह सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट है। शुक्रक्षयात् प्राणक्षयः। सृष्टि रचना की दृष्टि से यह बीज रूप है। योगशास्त्र २/१०५ में बताया गया है कि इसकी रक्षा से आयु दीर्घ होती है, अस्थियां वज्र समान होती हैं और शरीर पुष्ट। इससे बलशालिता प्राप्त होती है और तेजस्विता आती है। भर्तृहरि के अनुसार शुक्र रक्षा से विष भी प्रभावहीन हो जाता है। ऋषि दयानन्द इसके उदाहरण हैं। उन्हें जोधपुर में एक बार कांच पीसकर पिला दिया गया। वे ब्रह्मचारी व शुक्र रक्षक थे। शुक्र-शक्ति ने उन्हें दिये गये विष को प्रभावहीन कर दिया था।

स्थूल जघन्य ब्रह्मचर्य

मर्यादा एवं मानसिक पवित्रता के साथ अपनी विवाहिता स्त्री से ही सन्तोष कर अन्य सभी स्त्रियों को अवस्थानुसार माता, बहिन व पुत्री के समान समझना स्थूल जघन्य ब्रह्मचर्य धर्म/अणुव्रत है। महीने में २९ दिन पर नारी/पर पुरुष से रमण करने वाले यदि किसी एक दिन विशेषकर व्रत लेकर उस दिन दृढ़ रहकर उसका हर कीमत पर पालन करते हैं तो वह भी पुण्योन्मुख होने से श्लाध्य है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा (३३८) में भी कहा है :

"जो मण्णदि परमहिलं जणणीबहिणीसुआइसारिच्छं।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो॥"—

अर्थात् मन, वचन और काय से पर स्त्री को जो माता, बहिन और पुत्री के समान समझता है, उसके स्थूल ब्रह्मचर्य होता है।

स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत धारक को नारी जाति की झलक अथवा उसके स्पर्श से बचना आवश्यक नहीं है। बचा भी नहीं जा सकता। जननी नारी ही तो है, जो तीर्थंकर तक को जन्म देती है। वह अपने स्तनों से दूध पिलाती है और पाल-पोषकर बड़ा एवं योग्य बनाती है। भगनी और पुत्री भी तो नारी ही है। नारी जाति को विष बेल कहना अनुचित ही नहीं, वरन् उसके प्रति अन्याय भी है। परन्तु हां, दोनों ही सैक्सों के कामाकर्षण को विषबेल कहा जाय तो अनुचित नहीं है। बुराई की जड़ तो मन का विकार है। मन में विकार न आने दिया जाय तो नारी-दर्शन और नारी-स्पर्श पथभ्रष्ट नहीं कर सकते। लक्ष्मण जी बनवास में राम और सीता के साथ उनकी सेवा में बराबर रहे। सीता-हरण के बाद जब मार्ग में मिले आभूषणों को उनसे पहचनवाया गया कि ये सीता जी के तो नहीं है। तब उन्होंने उत्तर दिया कि :—

"कंगनं नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डले।
नूपरान्नैव जानामि, प्रातः पादानुवन्दनात्॥"

मैं न उनके कंगनों को पहचानता हूँ, और न उनके कुण्डलों को। प्रातः उनके चरणों में नमस्कार करते रहने से उनके नूपरों (बिछुओं) को ही पहचानता हूँ।

उल्लेख है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा (४०४) जो णवि जादि वियारं तरुणि-यण-कडक्ख-बाण-विद्धो वि, सो चेव सूरसूरो।" अर्थात् जो स्त्रियों के कटाक्ष-बाणों से विद्ध होकर भी विकार को प्राप्त नहीं होता वह शूर होता है। लक्ष्मण जी ऐसे ही विकारमुक्त थे। तभी तो शूर्पणखा के कटाक्ष और हावभाव उन्हें पथभ्रष्ट नहीं कर सके थे। यही स्थूल जघन्य ब्रह्मचर्य गृहस्थ का धर्म है, जो उसे निवृत्ति की ओर अग्रसर कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम ब्रह्मचर्य का मार्ग प्रशस्त करता है, और अनाचार एवं विद्वेष पर अंकुश लगाने/रखने का साधन है।

स्थूल मध्यम ब्रह्मचर्य

जो गृहस्थ श्रावक की सातवीं प्रतिमा धारण कर अपनी विवाहिता स्त्री के साथ भी रमने की इच्छा/भावना को त्याग देता है, पहले भोगे भोगों को मन/विचार में नहीं लाता और स्त्रीराग चर्चा से भी विरत हो जाता है, वह स्थूल मध्यम ब्रह्मचर्य का पालक हो जाता है और ब्रह्मचारी कहलाने लगता है। यह कोई डिग्री/डिकोरेशन नहीं है—बी० ए०, साहित्यरत्न की भांति जैसा कि कुछ व्रती इसे अपने नाम के आगे लगाकर भासित करते हैं। यह तो तलवार की धार पर चलने जैसा धार्मिक दायित्व है, संसार विरत श्रमण मार्ग का माईलस्टोन। वह संसारी होते हुए भी व्रती है। एक कथा है कि एक था युवक और एक थी युवती। दोनों ने ही कौमार-अवस्था में मुनियों से अलग-अलग उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था—एक ने पूर्वार्ध का और दूसरे ने उत्तरार्ध का। संयोग से दोनों प्रणय सूत्र में बंध गये। प्रथम मिलनबेला में जब दोनों को यह भेद खुला तो दोनों ने एक-दूसरे के व्रत का आदर किया और गृहस्थ अवस्था में साथ-साथ रहते हुए भी वे उस व्रत का आजीवन अखण्ड पालन करते रहे—जल में कमलवत्। यह है। उत्तम ब्रह्मचर्य का स्टेपिंगस्टोन।

उत्तम ब्रह्मचर्य

समस्त विषय-वासनाओं का निरोध कर निजात्मा में चरना/रमना उत्तम (सूक्ष्म निश्चय) ब्रह्मचर्य है। केवल मैथुनत्याग, अपनी विवाहिता स्त्री से भी रमण न करना तथा उसकी झलक से एवं स्त्री राग चर्चा से बचना ही उत्तम ब्रह्मचर्य नहीं है। संसार के समस्त ऐशो-आराम को तिलांजलि देना, आरम्भ के नौवों धर्मों (क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग और आकिंचन्य) और चारों महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य और परिग्रह त्याग) का सम्यक् पालन करते हुए पांचों इन्द्रियों और छठे मन पर पूर्ण काबू पाकर समस्त वाह्य एवं अंतरंग विषय-विकारों को रोक और निकाल बाहर करना श्रमणों का उत्तम ब्रह्मचर्य अर्थात् उसकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। अनगार धर्मामृत में कहा है "या ब्रम्हणि स्वात्मनि शुद्धबुद्धे चर्या तद् ब्रह्मचर्यव्रतं सार्वभौमं अर्थात् ब्रह्म/स्व-आत्मा में शुद्ध चर्या करना ही सार्वभौम ब्रह्मचर्य है। विषय सेवन विष से भी अधिक घातक है जैसा कि आदिपुराण में निरूपित किया है :—

"वरं विषं यदेकस्मिन् भवे हन्ति न हन्ति वा।
विषयास्तु पुनर्घ्नन्ति हन्त! जन्तूननेकशः॥"—३६/७४

अर्थात् विष खा लेना (विषय से) कहीं अच्छा है। वह प्राणी को एक ही बार में मारता है, शायद नहीं भी मारे, परन्तु विषय-सेवन तो उसे अनन्त बार मारता है।

समस्त वासनाओं/बाह्य एवं अंतरंग विषयविकारों को जो निकाल बाहर करता है, वह जीवात्मा इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि स्त्रियों के सर्वांगों को देखते हुए भी वह अपने भाव नहीं बिगड़ने देती। द्वादशानुप्रेक्षा की गाथा ८० में कहा है :

"सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं।
सो बम्हचेरभावं, सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि॥"

अर्थात् स्त्रियों के सर्वांगों को देखते हुए भी जो इनमें दुर्भाव नहीं करता, विकार को प्राप्त नहीं होता, वही वास्तव में दुर्द्धर ब्रह्मचर्य भाव को धारण करता है। आचार्य स्थूलभद्र इसके ज्वलन्त उदाहरणहैं। वे चार्तुमास में अवध की अनिंद्य सुन्दरी कोशा वेश्या की कामोत्तेजक चित्रों से भरी चित्रशाला में जाकर पद्मासन लगाकर आत्मलीन/ध्यानस्थ हो गये थे। वे चित्र उन्हें तनिक भी आकर्षित/विचलित नहीं कर सके थे और चार माह की दुर्द्धर ध्यान-साधना पूरी करके ही वे वहां से तपे। खरे सोने की भांति वे बेदाग बाहर आये थे।

मोक्ष का प्रवेश द्वार

ब्रह्मचर्य महाव्रतों में अन्तिम (पांचवां), और आत्मा के धर्मों में दसवां है। इन दोनों का ही आरम्भ अहिंसा एवं क्षमा से होता है। ब्रह्मचर्य व्रत/धर्म धारण करने से पूर्व आरम्भ के चारों व्रतों और नौवों धर्मों को धारण करना और पालन करना आवश्यक है। वगैर उनके धारण/पालन के उत्तम ब्रह्मचर्य चल नहीं सकता। जैसे-जैसे प्राणी उनसे सम्पन्न होता जाता है, और इन्द्रियों, मन तथा राग-द्वेष भावों का दमन/शमन करता जाता है, वैसे-वैसे वह उत्तरोत्तर आत्मरमण करता हुआ स्थूल से सूक्ष्म, व्यावहारिक से निश्चय एवं जघन्य से उत्तम ब्रह्मचर्य को धारण/पालन कर मोक्ष के द्वार पर जा पहुंचता है और अन्त में उसमें प्रवेश कर जाता है। अहिंसा/क्षमा मोक्षमार्ग का प्रवेश द्वार है तो ब्रह्मचर्य उसका अन्तिम छोर है। इस प्रकार इच्छा/वासनाओं का पूर्ण शमन हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है। कविवर द्यानतराय भी कह गये हैं :

"द्यानत दस धम पैंड चढ़िके, शिव महल में पग धरा।"

जब तक उत्तम ब्रह्मचर्य का धारण/पालन नहीं, तब तक मोक्ष/मुक्ति भी नहीं। तभी तो तीर्थंकरों सहित सभी मोक्षगामियों ने इसका सम्यक् पालन किया था। ब्रह्मचर्य धारण किये बगैर कोई जप, तप, पाठ, प्रतिष्ठा और विधि-विधान भी निर्विघ्न सम्पन्न नहीं होते हैं। विध्याध्ययन के लिए भी इसे अनिवार्य माना गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org